

डॉ० सूर्यमणि

प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
एस०एन०का० इन्दौर अम्बेडकर नगर
मो० नं० 7376875787



E-mail - suryamani089@ gmail.com

आचार मानव जीवन का अपरिहार्य अंग है। मनुष्य के मन में जब विचाराभ्युदय हुआ तो उसका ध्यान सर्वप्रथम वाह्य जगत् की ओर गया। कुछ कालोपरान्त उसके जीवन के उद्देश्य को जानने की इच्छा जाग्रत हुई जो आचार की उत्पत्ति की प्रेरणा श्रोत बनी। अस्तु हम कह सकते हैं कि आचार वह बौद्धिक प्रणाली है जिसके द्वारा नैतिक चेतना की निरन्तर खोज की जाती है। आचार शब्द अंग्रेजी भाषा के MORALITY का पर्याय है, जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के MORES (मोर्स) शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है, "रीति-रिवाज" या आदत।¹ अतः मानव के रीति-रिवाजों अथवा आदतों को आचार कहा जाता है। वास्तव में रीति-रिवाज मनुष्य के कर्मों का सप्रतिफल है, जो प्रचलन, व्यवहार या आदत के रूप में अवबोधित है। संस्कृत में आचार शब्द आङ्. उपसर्ग पूर्वक भ्वादिगणीय चर् धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है² जिसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- "आचरति एनम् अनेन इति वा" अर्थात् इसका या इसके द्वारा आचरण करता है। फलतः आचरण वह व्यवहार या कर्तव्य है जो मानव के अपने लक्ष्य प्राप्ति में सहायक कि वा साधन सोपान है। महाभारत में श्रेष्ठ पुरुषों के व्यवहार को 'आचार' कहा गया है।³ अन्यत्र 'यथाकारी यथाचारी तथा भवति' कहा गया है।⁴ अतः शिष्ट व्यक्तियों द्वारा अनुमोदित एवं बहुमान्य रीति-रिवाजों को हम आचार कह सकते हैं। ऐसे उदात्त आचार उपनिषदों में विशदता के साथ प्रतिपादित हैं।

उपनिषद् अध्यात्म विद्या के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के प्रतिपादक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। वेदों का दार्शनिक मूल्यांकन उपनिषदों के अध्ययन के पश्चात् ही पूर्ण होता है। उपनिषदों में ब्रह्म, जगत्, माया, मुक्ति के साथ ही साथ लोक जीवन के मर्म से संबंधित तत्व अथवा सिद्धान्त भी समाहित हैं। सुविचारित एवं आदर्श जीवनचर्या के विभिन्न सोपानों में उपादेय जीवन मूल्यों का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है, जिसमें तप, त्याग, सत्य अहिंसा, मैत्री की भावना, दानशीलता, पाप-पुण्य, अतिथि-सत्कार, शुचिता, गुरु-मातृ-पितृ भक्ति की भावना, प्रियवादिता, दयालुता प्रभृति अन्यान्य आचारिक तत्वों का समावेश है।

उपनिषद् साहित्य में सत्याचरण को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। सत्यमेव जयते नानृतम्⁵ इत्यादि नैतिक सूक्तों के द्वारा मानव को सत्याचरण की प्रेरणा दी गयी है। इस संसार में सकल

जड़-चेतन पदार्थ ईश्वर से व्याप्त हैं अतः उस ईश्वर का स्मरण करते हुए त्यागपूर्वक भोग करो और उसमें आसक्त मत हो, क्योंकि सांसारिक पदार्थ किसी का नहीं है।⁶ अतः त्यागपूर्वक जीवन की व्यावहारिकता का वरण करना चाहिए। जीवन के प्रत्येक आयाम में त्याग की भूमिका विशिष्ट हैं अपने श्रम से अर्जित धन को किसी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यय करना भारतीय संस्कृति की शिक्षा है इसी अर्जित धन को समाज के सदुपयोग में व्यय की परम्परा को 'दान' कहते हैं। उपनिषद् में श्रद्धया देयम् अश्रद्धया देयम् श्रिया देयम् ह्रिया देयम् भिया देयम् संबिदा देयम्⁷ इत्यादि नैतिक निर्देशों के द्वारा दानशीलता के व्यावहारिक नीतिमत्ता का समर्थन प्राप्त होता है। जिसमें दाता एवं ग्रहीता दोनों में पारस्परिक कुण्ठा का अभाव होता है। इसी प्रकार उपनिषदों में यत्र-तत्र आत्मानुभूति का साधन तप बताया गया। किन्तु उसकी अपनी आन्तरिक शक्ति को बढ़ाना और कठोर चिन्तन द्वारा बुद्धि का प्रदीप्तिकरण, आत्मा को शरीर के परावलम्बन से मुक्त करके बताया गया है।⁸ ये आचारिक मूल्य केवल त्यागात्मक और निषेधात्मक न होकर क्रियात्मक भी हैं। तप सभी प्रकार का सदगुण है। ऋत तप है, सत्य तप है, श्रुति तप है शान्ति तप है, दान तप है, यज्ञ तप है इत्यादि।⁹ तप के साथ ही साथ सत्य, अहिंसा इत्यादि का भी विवेचन उपनिषदों में प्राप्त होता है।¹⁰ उपनिषद् गुणग्राहिता की व्यावहारिकता को नैतिक कर्तव्य स्वीकार करते हैं अर्थात् जो श्रेष्ठ गुण सम्पन्न कर्म हो उसे ग्रहण करना दूसरे दोषों को नहीं।¹¹

एतदतिरिक्त उपनिषदों में अतिथि सत्कार की भावना को एक नैतिक आचरण के रूप में विवेचन किया गया है। जिसकी सेवा करना एक बहुत बड़ा तप है।¹² कठोपनिषद् में यम के घर उद्दालक पुत्र नचिकेता तीन दिवस तक अशनया पिपासा रहा, अनन्तर यम के उपस्थित होने पर नचिकेता के तीन दिवस उपवास से प्राप्त दोष-निवारणार्थ उसने तीन वर प्रदान किया।¹³ इससे विदित होता है कि अतिथि सेवा जैसे नैतिक कर्तव्य से व्यक्ति अपने को कर्मबन्धन से मुक्त कर स्वर्ग प्राप्ति कर सकता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में इसे एक श्रेष्ठ व्रत के रूप में स्वीकार करते हुए वर्णित है कि - अपने घर पर आये हुए को प्रतिफल उत्तर न दो वह एक व्रत है। किसी प्रकार से अन्नार्जन करना चाहिए और उससे तैयार भोजन को श्रद्धासिक्त होकर प्रदान करने से वैसा अन्न प्राप्त होता है।¹⁴ इससे स्पष्ट होता है कि अतिथि सेवा जैसे नैतिक कर्म करने से पुण्य और न करने पर प्रतिकूल परिणाम की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार मातृ-पितृ एवं गुरु भक्ति की भावना जैसे मौलिक कर्तव्य उपनिषदों में प्राप्त होते हैं।¹⁵ गुरुदक्षिणा का विधान इसी प्रकार तथ्य की पुष्टि करता है। अन्यथा गुरुपदिष्ट ज्ञान-विज्ञान के बदले दक्षिणा का कोई महत्त्व नहीं है।¹⁶ मातृ देवोभव, पितृदेवो भव' 'आचार्य देवो भव'¹⁷ इत्यादि नैतिक सूक्तों के द्वारा भक्ति-भावना को प्रश्रय देना एक आचारिक कर्तव्य का ही बोधक है। उपनिषदों में वे समस्त कार्य नैतिक स्वीकृत हैं जिनसे मनुष्य रागद्वेष आदि से मुक्त होता है, जहाँ न्याय और मुक्ति की प्रधानता होती है। व्यक्ति अपने संकीर्ण व्यक्तित्व से ऊपर उठकर अन्तर्यामी, सर्वव्यापी, सत्ता द्वारा नियुक्त विश्वसंचालन की योजना में अपने को सहकारी समझता है। संयम दान, दया उदारता सदगुण है जो आचरण की साधना में सहायक है।¹⁸

आज वैज्ञानिक और तकनीकी प्रधान युग में मशीनीकृत वस्तुओं का सर्वत्र बोलबाला है। इतना ही नहीं मनुष्य यंत्रवत् हो गया है। पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव ने सर्वसुखोपभोगवाद की प्रवृत्ति को जन्म दिया है जिसके कारण समाज में मनुष्यों के द्वारा नैतिक मूल्यों के स्थान पर धन को ही सर्वोच्च मानवीय मूल्य माना जाने लगा है। यह भी अति दुःखद विषय है धन के आगे विद्या तिरस्कृत हो रही है।¹⁹ सम्प्रति मनुष्य के नैतिक मूल्यों में अत्यधिक ह्रास हो जाने के कारण धार्मिक, समाजिक, राजनैतिक और शैक्षणिक स्तर पर भी मूल्यों में विघटन हो रहा है, जो वस्तुतः न तो विश्व की दृष्टि से हितकर है और न ही हमारे राष्ट्रीय हितों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। नैतिक नियमों की शिथिलता से ही आचरण का पतन हो रहा है। हमारे समाज में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि अहितकर संवेगों के द्वारा सत्य अहिंसा प्रभृति आचारिक कर्तव्य उपेक्षित से दिखायी दे रहे हैं। सर्वत्र झूठ, कपट, चोरी, बेइमानी का आवरण है। फलतः इस अति भौतिकवादी युग में उपनिषद् मनुष्य मात्र के लिए यह संकेत करते हैं कि उसे उन्नति प्रदान करने की दिशा में अग्रसर होना चाहिए। जिस उन्नति से सभी की सेवा, सभी का हित, और सभी का सुख मिले। हमें वाणी की कठोरता मिथ्या-भाषण, अप्रिय एवं अहितकर वचन एवं परनिन्दा श्रवण तथा राग द्वेष से मुक्त होकर विषयों पर संयम रखकर स्वयं को शुद्ध एवं दिव्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। भौतिकवाद की परिधि से निकलकर अपने मन के भीतर स्थित दुर्गुणों दुर्व्यसनों और पापों का निवारण करके सत्य, तप, दान, आतिथ्य, मातृ-पितृ गुरु भक्ति की भावना को जागृत कर सुख-समृद्धि एवं विकास का हेतु बनने का प्रयत्न करना चाहिए, जोकि उपनिषदों में ऐसे मानवीय उदात्त आचारिक कर्तव्यों के परिपालन से ही संभव है।

संदर्भ ग्रन्थ—

1. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका भाग 8, पृ० 757
2. चरणगतिभक्षणयोः (श्वादि 552) भावे सू० 3/8/28
3. साधूनां च यथावृत्तमेतदाचारलक्षणम्। (म०भ०अनु० 104)
4. बृहदारण्यक उप० 4/4/5
5. मुण्डकोपनिषद् 3/1/6
6. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीयाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ (ईशोपनिषद् 1/2)
7. तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षाध्याय 11 अनुवाक्।
8. मुण्डकोपनिषद् 1/1/9
9. मुण्डकोपनिषद् 3/1/6, छान्दोग्य० 3/17/4, प्रश्न० 6/2, तैत्तिरीय० 1/9
10. बृहदारण्यक 5/2/1-3, तैत्तिरीय 1/9
11. तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षाध्याय अनुवाक् 2।
12. शांति पर्व 221/7।
13. कठोप० 1/1/9।
14. तैत्तिरीयोपनिषद् 3/10
15. यथावच्छास्त्रसम्पन्ना कस्तं देशं परित्यजेत्। (शान्तिपर्व 287/42)।
16. छान्दोग्योपनिषद् 3/11/6।
17. तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11।
18. बृहदारण्यक उप० 5/2/1-3।
19. सद्विद्या यदि किं धनैरयशो यद्यस्ति किं मृत्युना। (नीतिशतकम् 53)